

गैर-रोमैंटिक कविता : समाज के साथ एक नए रागात्मक संबंध की तलाश (अज्ञेय और टी.एस. इलियट के संदर्भ में)

डॉ. विधि शर्मा,

एसोसिएट प्राफेसर,
अदिति महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

छायावाद के बाद हिंदी कविता को एक निश्चित दिशा में मोड़ने का श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है। श्रेय इसलिए कि बीज रूप में इस परिवर्तन की ज़मीन पहले से तैयार होती आ रही थी। निराला और पंत की परवर्ती कविताओं में नवीन प्रवृत्तियों के ये संकेत सुलभ हैं। किंतु यह बात तो वैसे ही सच होगी जैसे कोई कहे कि प्रगतिवादी अथवा प्रयोगवादी प्रवृत्तियों के बीज छायावादी कविता में निहित हैं और इसी प्रकार छायावादी कविता के बीज द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक कविता में। यह तो एक स्वाभाविक क्रम है। परंपरा से ही नवीनता का उन्मेष होता है। दिनकर-बच्चन-भगवतीचरण वर्मा आदि की पीढ़ी ने छायावादी काव्यभाषा को तोड़ा। वे उसे बोलचाल की भाषा के नजदीक लाए। उन्होंने छायावादी आध्यात्मिकता से अलग होने की जमीन तैयार की। छायावाद के बाद के कवियों का न केवल बहिर्जगत् वरन् अंतर्जगत् भी काफी हद तक अध्यात्मविहीन है। इस आध्यात्मिक मुद्रा के अंतिम रूप से विनाश का श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है : "इस आध्यात्मिक मुद्रा का विनाश किसने किया?...जड़ खोदने का काम तो दिनकर, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा आदि ने ही शुरू किया था। अज्ञेय और उनके साथ या बाद वालों ने तो सिर्फ मट्ठा डाला है।"¹ अज्ञेय, दिनकर और बच्चन को संक्रमणकालीन कवि मानते हैं। इस समय तलाश थी एक नई भाषा की, साथ ही 'समाज के साथ एक नए संबंध'

की। दिनकर-बच्चन की भाषा बोलचाल की भाषा के निकट तो थी किंतु समाज के साथ अपेक्षित रागात्मक संबंध की खोज उसमें नहीं थी। महादेवी वर्मा को जैसे छायावादी आंदोलन का लाभ मिला, उसकी लड़ाई उन्हें नहीं लड़नी पड़ी, उसी प्रकार लगभग वैसे ही लाभ भगवतीचरण वर्मा को बच्चन की कविता से मिला और उसके लिए उन्हें विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। नरेंद्र शर्मा भी पंतजी की छाया में कुछ दबे-दबे से रहे। दूसरे, दिनकर-बच्चन- भगवतीचरण वर्मा की पीढ़ी को विकास का अधिक अवसर भी नहीं मिला। प्रगतिवाद और तारसप्तक के बीच चार-पांच वर्ष का अंतराल है जिसमें इन कवियों ने अपना जौहर दिखाया। *तारसप्तक* (1943) के आते-न आते संवदेना में स्पष्ट बदलाव दिखाई देने लगा था। अतः उनकी कविता जल्दी ही पुरानी पड़ने लगी। अज्ञेय की तलाश ऐसी कविता के लिए थी जिसमें वैयक्तिकता की एकांत उपेक्षा भी न हो, साथ ही जो समाज के साथ नए रागात्मक संबंध को व्यक्त करे।

अज्ञेय की रचनाओं के विकास-क्रम को यदि देखें तो उसमें गैर-रोमैंटिक तेवर एकबारगी नहीं आ गया। उनकी आरंभिक रचनाओं पर शिल्प और भाषा की दृष्टि से छायावाद का गहरा प्रभाव है। यह प्रभाव उनकी रचनाशीलता के पहले दौर अर्थात् 1938 के आसपास तक रहा। उन्होंने अपनी रचनाओं पर मैथिलीशरण गुप्त और

छायावादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत का प्रभाव तो स्वीकार किया है किंतु प्रसाद का नहीं। लेकिन सचाई यह है कि इन आरंभिक कविताओं पर प्रसाद का प्रभाव सबसे मुखर है। तारसप्तक के कवियों में छायावादी भावधारा से सर्वाधिक प्रभावित कवि अज्ञेय ही हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में : “अज्ञेय की अनेक रचनाओं (‘चुप हो जग के रौरव नाद’ आदि) पर प्रसाद के भाव-बोध, छंद-कौशल और शब्द-शिल्प का प्रभाव है।”² उनके पहले कविता-संग्रह का नाम *चिंता* इस दृष्टि से संकेतगर्भी है। इससे बरबस ही हमारा ध्यान *कामायनी* के ‘चिंता’ सर्ग की ओर चला जाता है। इन आरंभिक कविताओं पर ‘आंसू’ और ‘चिंता’ सर्ग की लय-योजना का प्रभाव देखा जा सकता है :

“व्यथा मौन, वांछा भी मौन, प्रणय
भी, घोर घृणा भी मौन
हाय, तुम्हारे नीरव इंगित में
अभिप्रेत भाव है कौन?”³

(26 जून, 1932)

या

“कल मुझमें उन्माद जगा
था, आज व्यथा निःस्पंद
पड़ी
कल आरक्त लता फूली थी,
पत्ती-पत्ती आज झड़ी।”⁴

(नवंबर, 1933)

छायावाद का यह प्रभाव केवल कविता तक ही सीमित नहीं है वरन् कथा साहित्य की भाषा में भी द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए *शेखर : एक जीवनी* के पहले ही पृष्ठ के कुछ वाक्य : “यौवन के ज्वार में समुद्र-शोषण। सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुंतल। शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला

बरसाती बादल।”⁵ इस गद्य का मिजाज न केवल छायावादी है वरन् यह प्रसाद के गद्य के अनुकरण पर लिखा गया है। विजयदेव नारायण साही ने उचित ही संकेत किया है कि “प्रसाद और अज्ञेय की समानता अचरज में डालती है। वही शालीनता, वही शब्दों की चौकसी, वही आभिजात्य और वही कुछ खुला हुआ और कुछ डूबा हुआ व्यक्तित्व। बेशक दोनों के बीच दो युगों का अंतर है, लेकिन दो ही युगों का अंतर है।”⁶ अज्ञेय की इस दौर की ‘विपथगा’, ‘मिलन’, ‘अमरवल्ली’, ‘छाया’, ‘गृहत्याग’, ‘अकलंक’, ‘एकाकी तारा’, इत्यादि जैसी कहानियों पर भी छायावादी भाषा का प्रभाव हमारा ध्यान आकर्षित करता है। लेकिन धीरे-धीरे अनुभूति के स्तर पर सजग रूप से वह अपने को रोमैंटिक भाव-बोध से अलग करते हैं। यह अलगाव उनके तीसरे काव्य-संग्रह *इत्यलम्* (1946) तक आते-आते एक नए ‘स्ट्रक्चर’ के रूप में दिखाई देने लगता है। भाव और भाषा, दोनों स्तरों पर। इस संग्रह की बहुचर्चित कविता ‘मैं वह धनु हूँ’ जैसे छायावादी भाव-बोध से पूरी तरह अलग हो जाने की घोषणा करती है।

“मैं वह धनु हूँ, जिसे साधने
में प्रत्यंचा टूट गई है
स्खलित हुआ है बाण,
यदपि ध्वनि दिग्दिगंत में
फूट गई है।”⁷

ध्वनि के दिग्दिगंत में फूटने से जो भाषा की नई अर्थवत्ता पैदा हुई है उसकी चर्चा हिंदी आलोचना में नई कविता के भाषा-प्रयोग के संदर्भ में काफी हुई। अज्ञेय ने *भग्नदूत* से लेकर *इत्यलम्*, तक की इन कविताओं को ‘भाषा के दृष्टिकोण से एक पड़ाव’⁸ माना। इस तरह अज्ञेय द्वारा रोमानी संवेदना से अलग होने की लगातार कोशिश को ध्यान में रखकर ही रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा : “अज्ञेय की कविता गैर-रोमैंटिक है यह कहना

शायद बहुत ठीक न हो। पर अज्ञेय में गैर-रोमैंटिक कविता की संभावना विवृत्त होती अवश्य दिखाई देती है।⁹

‘निर्वैयक्तिकता’ का अर्थ : ‘मम’ से ‘ममेतर’ तक

वैचारिक रूप से 1938 के आसपास अज्ञेय ब्राउनिंग, रोजैटी, लॉरेंस जैसे अन्य विदेशी रचनाकारों के साथ इलियट से गंभीर रूप से प्रभावित हुए। विशेष रूप से *द सैक्रेड वुड* में संगृहित उनके प्रसिद्ध निबंध ‘ट्रडीशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट’ (परंपरा और मौलिकता) से। इस निबंध का उन्होंने ‘रूढ़ि और मौलिकता’ शीर्षक से ‘मुक्त अनुवाद’ भी किया। इस निबंध में मुख्य रूप से दो विषयों पर विचार किया गया है—परंपरा और *निर्वैयक्तिकता* पर। परंपरा की चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यहां हम विशेष रूप से उनके निर्वैयक्तिकता-संबंधी विचारों का आकलन करेंगे। इस निबंध के विचार अज्ञेय और इलियट दोनों पर लागू होते हैं क्योंकि दोनों ने अपनी आलोचना में इनके मूल विचारों का रचनात्मक उपयोग किया है। अज्ञेय के संदर्भ में निर्वैयक्तिकता-संबंधी विचारों का महत्व अपेक्षाकृत अधिक है जबकि इलियट के संदर्भ में परंपरा-संबंधी विचारों का। अपने परवर्ती चरण में इलियट साहित्यिक परंपरा को एक हद तक तिलांजलि देकर धार्मिक परंपरा को बहुमान देने लगे थे। उनके अनुसार ऐसी साहित्यिक परंपरा को ही मूल्यांकन का आधार बनाया जाना चाहिए जो मसीही प्रतिमानों पर आधारित हो। उन्होंने लिखा : “साहित्य की महानता का निर्धारण विशुद्ध रूप से साहित्यिक मानदंडों के आधार पर नहीं किया जा सकता, यद्यपि कोई कृति साहित्य है या नहीं, इसके निर्धारण का आधार केवल साहित्यिक मानदंड ही हैं।”¹⁰ अज्ञेय ने अपने विचारों में परंपरा को अतीत और वर्तमान के ऐसे

द्वंद्वीय रिश्ते तक सीमित रखा जिसमें वर्तमान को केंद्रीयता प्राप्त हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक साहित्य में परंपरा का यही अर्थ ग्राह्य भी है। साथ ही अज्ञेय ने अपने विवेचन में बराबर साहित्यिक परंपरा को ही आधार बनाया।

इलियट ने जब लिखना शुरू किया तब आलोचना के विविध संप्रदाय सक्रिय थे; जैसे—ऐतिहासिक आलोचना, मनोविश्लेषणवादी आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना, प्रभाववादी आलोचना आदि। उन्होंने अपने आलोचनात्मक कृतित्व की शुरुआत प्रभाववादी समीक्षा पर तीव्र प्रहार से की। प्रभाववादी समीक्षा की भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा : “इस पर अधिक विचार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह ऐसे मानसों को प्रभावित करती है जो इतने जीर्णशीर्ण और आलसी हैं कि मूल रचना के आमने-सामने आने में भी कतराते हैं।”¹¹ हमारे यहां आचार्य शुक्ल को भी प्रभाववादी समीक्षा से विशेष शिकायत थी। अपने इतिहास में उन्होंने उस पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए लिखा : “प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा कोई ठीक-ठिकाने की वस्तु ही नहीं। न ज्ञान के क्षेत्र में उसका कोई मूल्य है, न भाव के क्षेत्र में। उसे समीक्षा या आलोचना कहना ही व्यर्थ है। किसी कवि की आलोचना कोई इसीलिए पढ़ने बैठता है कि उस कवि के लक्ष्य को, उसके भाव को ठीक-ठीक हृदयंगम करने में सहारा मिले; इसलिए नहीं कि आलोचक की भावभंगी और सजीले पद-विन्यास द्वारा अपना मनोरंजन करे। यदि किसी रमणीय अर्थगर्भित पद्य की आलोचना इसी रूप में मिले कि ‘एक बार इस कविता के प्रवाह में पड़कर बहना ही पड़ता है। स्वयं कवि को भी विवशता के साथ बहना पड़ता है; वह एकाधिक बार मयूर की भांति अपने सौंदर्य पर आप ही नाच उठा है’ तो उसे लेकर कोई क्या करेगा?”¹² इलियट की आलोचना में कदम-कदम पर ऐसे वाक्य मिलते हैं जहां उन्होंने व्यक्तिगत भावों से मुक्त होकर मूल रचना पर

ध्यान केंद्रित करने का निर्देश दिया है। कुछ अंश देखे जा सकते हैं : “आलोचना संवेदना का विकास है—निकृष्ट आलोचना मात्र भावाभिव्यक्ति।”¹³ पुनः “सच्ची आलोचना और सूक्ष्म मूल्यांकन कवि पर नहीं कविता पर ध्यान केंद्रित करते हैं।”¹⁴ भवदमेज बत्पजपबपेउ दक मदेपजपअम चचतमबपंजपवद पे कपतमबजमक दवज नचवद जीम चवमज इनज नचवद जीम चवमजतलण्ड अज्ञेय ने लिखा : “आलोचना का विषय साहित्य है, साहित्यकार नहीं, कविता है, कवि नहीं।”¹⁵ इलियट के अनुसार जो समीक्षक इतिहास अथवा दर्शन को आलोचना का आधार बनाना चाहते हैं वे भी आलोचक कहलाने के योग्य नहीं हैं : “अच्छा हो कि ऐतिहासिक और दार्शनिक आलोचक को सीधे—सीधे इतिहासकार और दार्शनिक ही कहा जाए।”¹⁶ प्राचीन चिंतकों में उन्होंने अरस्तू की प्रशंसा की है क्योंकि उसने कोई भी क्षेत्र क्यों न चुना हो, “उनकी दृष्टि पूरी तौर पर, और पूरी दृढ़ता के साथ, वस्तु पर ही केंद्रित रही है।”¹⁷

प्रभाववादी तथा ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति की अनुपयोगिता सिद्ध करने के साथ—ही—साथ इलियट ने रोमानी प्रतिमानों पर भी प्रहार किए क्योंकि कविता की रोमानी धारणा भी (जिसके अनुसार कला कवि के व्यक्तित्व का प्रकाशन है) आलोचक का ध्यान कवि से कविता की ओर ले जाती है। इसलिए आधुनिक आलोचना—दृष्टि को विकृत करने में इसका भी बहुत बड़ा हाथ है। वास्तव में नवीन काव्य को मुख्य चुनौती स्वच्छंदतावादी काव्यधारा से ही थी। आलोचना प्रतिमान भी उसी के आधार पर निर्मित हुए थे। स्वच्छंदतावादी काव्य और आधुनिक (इलियट के युग के) काव्य के बीच में जो काव्यधाराएं थीं वे उतनी महत्वपूर्ण नहीं थीं। इसीलिए इलियट ने स्वच्छंदतावादी काव्य मूल्यों को विशेष रूप से अपने विरोध का लक्ष्य बनाया। अज्ञेय के सामने

भी इसी से मिलती—जुलती चुनौती थी। नवीन काव्य (नई कविता) के सामने भी मुख्य चुनौती स्वच्छंदतावादी काव्य और उसके काव्य मूल्य थे। इनके बीच में जो काव्यधाराएं थीं (जैसे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद) वे अपेक्षाकृत क्षीण थीं और वैसी कोई चुनौती पेश नहीं करती थीं। अतः रोमानी काव्य—मूल्यों के खिलाफ इलियट के विचार अज्ञेय को विशेष रूप से रुचे और इनका उन्होंने छायावाद का विरोध करने में सार्थक उपयोग भी किया ताकि नए काव्य—मूल्यों को अपना उचित स्थान मिल सके। स्वच्छंदतावाद और छायावाद में वैयक्तिकता पर काफी बल था। अतः इसके खिलाफ इलियट ने अपने प्रसिद्ध निबंध ‘ट्रडीशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट’ में निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत की प्रतिष्ठा की। निर्वैयक्तिकता लेखन मात्र की अनिवार्य शर्त है। अज्ञेय ने लिखा : “जो सचाई लिखे हुए को लिखने वाले से अलग करके एक स्वतंत्र अस्तित्व दे देती है उसी का नाम तो लेखन है।”¹⁸ विशेष रूप से इस सिद्धांत से सहमत होने की वजह से ही अज्ञेय ने इलियट के निबंध का रूपांतर या भावानुवाद ‘रूढ़ि और मौलिकता’ शीर्षक से किया। अंग्रेजी में इलियट से पहले झूम (टी.ई.) और एज़रा पाउंड इस विद्रोह की शुरुआत कर चुके थे किंतु इस दिशा में आधुनिक पीढ़ी का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय टी.एस. इलियट को ही है। ‘परंपरा और मौलिकता’ वाले निबंध में ही उन्होंने घोषणा की : “कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई व्यक्तित्व नहीं होता, केवल एक विशेष माध्यम होता है जो एक माध्यम ही है, व्यक्तित्व नहीं।”¹⁹ गण्णजम चवमज ि दवज च्चमतेवदंसपजलण्ड जव मगचतमे इनज चंतजपबनसंत उमकपनउए िपबी पे वदसल उमकपनउ दक दवज च्चमतेवदंसपजलण्ड यह माध्यम ऐसा है “जिसमें मनोप्रभाव और अनुभूतियां बड़े अप्रत्याशित रूप में संघटित होती हैं। यह भी संभव है कि जो प्रभाव और अनुभव व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण हों उन्हें कविता में कोई स्थान न मिले और जो कविता में

महत्वपूर्ण हो उठते हैं उनकी भूमिका व्यक्ति अर्थात् व्यक्तित्व में नगण्य हो।²⁰ वर्ड्सवर्थ की कविता की परिभाषा (कविता तीव्र मनोवेगों का सहज उच्छलन है।) से उन्हें खास शिकायत है। इसे अनुपयुक्त ठहराते हुए उन्होंने लिखा : “कविता भाव का उन्मोचन नहीं, भाव से पलायन है, वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से पलायन है।²¹ च्वमजतल पे दवज जनतदपदह सववेम वमिउवजपवदए इनज द मेबंचम तिवउ मउवजपवदय पज पे दवज जीम मगचतमेपवद वचि चमतेवदंसपजलए इनज द मेबंचम तिवउ चमतेवदंसपजलण्ड इसी बात को उन्होंने इसी निबंध में, शब्दावली बदलकर, अनेक बार कहा है ताकि इसके महत्व को रेखांकित किया जा सके। “कलाकार का विकास एक प्रकार का अनवरत आत्मोत्सर्ग है, व्यक्तित्व का अनवरत निषेध।²² जेम चतवहतमे वद तजपेज पे बवदजपदनंस मसबितपपिबमए बवदजपदनंस मगजपदबजपवद वचि चमतेवदंसपजलण्ड “कला में अभिव्यक्त भाव निर्वैयक्तिक होता है और जब तक कवि, अपनी निर्माणाधीन रचना के प्रति, पूरी तरह समर्पित नहीं होता तब तक इस निर्वैयक्तिकता की स्थिति को नहीं पहुंच सकता।²³ जेम मउवजपवद वितज पे पउचमतेवदंसण दक जीम चवमज बंददवज तमबी जीपे पउचमतेवदंसपजल पूजीवनज नततमदकमतपदह पीपउमसिवससल जव जीम वृता जव इम कवदमण्ड “जितना ही श्रेष्ठ कलाकार होगा उतनी ही पूर्णता से उसमें भोगने वाले प्राणी और रचना करने वाले कलाकार में अंतर होगा।²⁴ ण्णजेम उवतम चमतमिबज जीम तजपेजए जीम उवतम बवउचसमजमसल मचंतंजम पद पीपउ पूसस इम जीम उंद वीव नमिते दक जीम उपदकीपबी बतमंजमेण्ण्ड

ऊपर दिए गए उद्धरणों में से अंतिम उद्धरण से अज्ञेय इतने प्रभावित थे कि उन्होंने ‘रूढ़ि और मौलिकता’ निबंध में एकदम शीर्ष पर इसे स्थान

दिया और वह भी मूल अंग्रेजी में, हालांकि इलियट के निबंध में यह अंश लगभग मध्य में आया है। इससे यह प्रकट होता है कि इस निबंध के अपने रूपांतर में अज्ञेय इस धारणा को केंद्रीय स्थान देना चाहते हैं। यही नहीं ‘शेखर : एक जीवनी’ की भूमिका में उन्होंने अपने उपन्यास के संदर्भ में इस धारणा का सर्जनात्मक उपयोग किया है। उन्होंने लिखा : “...आजकल का अधिकांश हिंदी साहित्य और आलोचना एक भ्रांत धारणा पर आश्रित है; कि आत्म-घटित (आत्मानुभूति नहीं, क्योंकि अनुभूति बिना घटित के भी हो सकती है) का वर्णन ही सबसे बड़ी सफलता और सबसे बड़ी सचाई है। यह बात हिंदी के कम लेखक समझते या मानते हैं कि कल्पना और अनुभूति-सामर्थ्य; मदेपइपसपजलण्ड के सहारे दूसरे के घटित में प्रवेश कर सकना, और वैसा करते समय आत्मघटित की पूर्व-धारणाओं और संस्कारों को स्थगित कर सकना, ढरमबजपअम हो सकना ही लेखक की शक्ति का प्रमाण है। इसके विपरीत लेखकों में ऐसे अनेक मिल जाएंगे जो ऐसी अनुभूति (मैं फिर कहता हूँ कि आत्मघटित ही आत्मानुभूति नहीं होता पर घटित भी आत्मानुभूति हो सकता है यदि हममें सामर्थ्य है कि हम उसके प्रति खुले रह सकें) को परकीय, सैकंड-हैंड अतएव घटिया और असत्य कहेंगे। ऐसे व्यक्तियों के लिए टी.एस. इलियट की उस उक्ति का कोई अर्थ नहीं होगा जो वास्तव में इसका एकमात्र उत्तर है—श्रेष्ठतम पे सूले मचंतंजपवद इमजूममद जीम उंद वीव नमिते दक जीम तजपेज वीव बतमंजमेय दक जीम हतमंजमत जीम तजपेज जीम हतमंजमत जीम मचंतंजपवदण्ड²⁵ इस प्रकार अज्ञेय ने टी.एस. इलियट की उपर्युक्त पंक्ति का हवाला देते हुए भोक्ता और रचनाकार के बीच का जो अंतर स्पष्ट किया वह धीरे-धीरे उनका सिद्धांत बना। आगे चलकर *चिंता* (1942) कविता-संग्रह की भूमिका में इस बात को उन्होंने ‘रचना की सार्वजनीनता’ के अर्थ में लिखा : “काव्य रचना मूलतः अपने को

अनुभूति से पृथक करने का प्रयत्न है, अपने भावों के निर्व्यक्तिकरण ;कमचमतेवदंसर्पेजपवदद्ध की चेष्टा।²⁶ अज्ञेय के लिए बिना इसके कविता निरा आत्म-निवेदन है और सच होकर भी वह इतनी व्यक्तिगत है कि उसे 'काव्य की अभिधा' के योग्य भी नहीं माना जा सकता। पुनः 'नदी के द्वीप' उपन्यास के मूल पाठ के दौरान भी अज्ञेय ने इलियट के उक्त कथन को उद्धृत किया है। 'आत्मघटित' और 'आत्मानुभूति' में अज्ञेय ने जो अंतर बताया है वह एक प्रकार से अपने पाठक को आगाह करने के लिए। कहानी के पात्रों में जो त्रुटि है, ठीक वही त्रुटि उसके लेखक में भी है यह मानना गलत है। यह तो एक प्रकार से स्पष्ट ही है लेकिन आगाह करने का कारण यह है कि 'हिंदी का पाठक ऐसी भूल प्रायः करता है।'

इलियट ने लिखा था कि कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई व्यक्तित्व नहीं होता बल्कि एक 'माध्यम' होता है। वह माध्यम है—कवि का मन। इसी माध्यम से गुजरकर लौकिक और निजी अनुभव कला का रूप ग्रहण करते हैं। दूसरे शब्दों में कवि का मानस ही वह माध्यम है जिसके द्वारा वह लौकिक अनुभवों को कलानुभव का रूप देता है। कवि के इस मानस में एक रहस्यमय समन्वयकारी शक्ति होती है जो लौकिक अनुभव को कलानुभव में ढालती है। यह माध्यम कैसे कार्य करता है, इसे इलियट ने एक रासायनिक उपमा द्वारा समझाया है। उपमा यह है कि ऑक्सीजन और सल्फर डाइऑक्साइड से भरे पात्र में यदि प्लेटिनम का तार डाल दिया जाए तो वे दोनों गैसों मिलकर सल्फ्यूरस एसिड में परिवर्तित हो जाती हैं। यह रासायनिक क्रिया प्लेटिनम के तार की उपस्थिति के बिना नहीं होती। इसके बावजूद नए अम्ल (सल्फ्यूरस एसिड) में प्लेटिनम का कोई अंश नहीं होता, न प्लेटिनम में किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई देता है। इस उपमा में तीन चीजों का उल्लेख है : 1. ऑक्सीजन और सल्फर डाइऑक्साइड, 2. प्लेटिनम का तार,

3. सल्फ्यूरस एसिड। इसी के समानांतर तीन चीजें हैं क्रमशः लौकिक अनुभव, कलाकार का मन और कलाकृति। लौकिक अनुभव कलाकार के मन रूपी माध्यम से गुजरकर कलाकृति का रूप ग्रहण करते हैं। जैसे उक्त रासायनिक उपमा में प्लेटिनम का तार निष्प्रभावित रहता है और नई गैस पर प्लेटिनम का कोई असर नहीं दिखाई देता उसी प्रकार कलाकृति पर रचनाकार के मन का कोई असर नहीं दिखाई देता। प्लेटिनम का तार यहां सिर्फ उत्प्रेरक का काम करता है।

उपर्युक्त रासायनिक उपमा में इलियट वैयक्तिकता या व्यक्तित्व का एकांत निषेध करते हुए दिखाई देते हैं। अज्ञेय ने वैयक्तिकता का एकांत निषेध नहीं किया। छायावादी दौर में हिंदी साहित्य को एक नई वैयक्तिकता मिली थी जो कि एक उपलब्धि थी। अज्ञेय इस उपलब्धि को एक हद तक कायम रखते हुए निर्वैयक्तिक रूपाकार देना चाहते थे। यह कार्य कमोवेश दिनकर-बच्चन ने भी किया किंतु अज्ञेय ने यह भूमिका ज्यादा कुशलता से निभाई। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा : "जैसे-जैसे आत्मपक्ष का विकास होता है, उसकी पहचान बढ़ती है, जैसे और उसके साथ-साथ अहम् पक्ष का महत्व कम होता जाता है, वहां पर 'ममेतर' जो है उसके साथ जुड़ने की बात ज्यादा महत्व की हो जाती है।"²⁷ यहां आत्म के विकास के साथ-साथ अहम् अर्थात् व्यक्तित्व का अंश कम होने की बात कही गई है। बल्कि कम या विरल होने से उसका महत्व और सघन हो जाता है। अतः उन्होंने लिखा : "छोटा होने के साथ-साथ वह अधिक महत्वपूर्ण भी होता चलता है क्योंकि वह व्यक्ति की मौलिकता का घनीभूत रस है, व्यक्तित्व की प्राणवायु है...वह परंपरा को गढ़ता है, उसे विकसित और विवर्धित करता है। अभिन्नतम व्यक्तिगत अनुभूति से समूह का अनुभूति पुंज अधिक समृद्ध और गहरा होता है। वही व्यक्तित्व की देन है।"²⁸ इस प्रकार अज्ञेय

व्यक्तित्व का पूर्ण निषेध करके अतिवादी सीमा तक नहीं जाते। अपने परवर्ती चरण में इलियट भी व्यक्तित्व की आंशिक उपयोगिता स्वीकार करते हैं।

संदर्भ—संकेत

1. संपा. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप, चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही, *नयी कविता* (सैद्धांतिक पक्ष), खंड-1, पृ. 188
2. डॉ. रामविलास शर्मा 'अज्ञेय और नव रहस्यवाद', *नयी कविता और अस्तित्ववाद*, पृ. 78
3. *सदानीरा* (भाग-1), पृ. 20
4. वही, पृ. 52
5. शेखर : *एक जीवनी*, पृ. 3
6. विजयदेव नारायण साही, 'लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस', *छठवां दशक*, पृ. 317
7. *सदानीरा* (भाग-1), पृ. 154
8. *अज्ञेय अपने बारे में*, पृ. 69
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या*, पृ. 11
10. 'रिलीजन एंड लिटरेचर' (धर्म और साहित्य), *सिलैक्टिड एसेज़*, पृ. 388
11. 'ए ब्रीफ ट्रीटाइज ऑन द क्रिटिसिज्म ऑफ पोइट्री', *चैपबुक* नं. 2, मार्च 1920
12. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, पृ. 539
13. 'द परफेक्ट क्रिटिक', *द सैक्रेड बुड*, पृ. 15
14. 'ट्रडीशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट', *द सैक्रेड बुड*, पृ. 53
15. 'रूढ़ि और मौलिकता', *त्रिशंकु*, पृ. 66
16. 'द परफेक्ट क्रिटिक', *द सैक्रेड बुड*, पृ. 16
17. वही, पृ. 11
18. 'एक आम आदमी; एक युवा लेखक', *सर्जना और संदर्भ*, पृ. 265
19. 'ट्रडीशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट', *द सैक्रेड बुड*, पृ. 56
20. वही, पृ. 58
21. वही, पृ. 58, 'रूढ़ि और मौलिकता', *त्रिशंकु*, पृ. 65
22. वही, पृ. 53
23. वही, पृ. 59
24. वही, पृ. 54
25. शेखर : *एक जीवनी*, पहला भाग, भूमिका, पृ. 7-8
26. *चिंता*, भूमिका
27. संपा. कृष्णदत्त पालीवाल, 'समाज संकट और मुक्ति', अज्ञेय से साक्षात्कार, पृ. 163
28. 'परिस्थिति और साहित्यकार', *त्रिशंकु*, पृ. 81-82